. सप्तमोऽध्याय: ज्ञानविज्ञानयोग[सम्पाद्यताम्] ॐ

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

मुझ पर हो आसक्त तुम, पार्थ योग अभ्यास।

निश्चित मुझको जान सको,सुन लो करो प्रयास ॥७– १॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

अब मै तुमसे कह रहा, पूर्ण दिव्य विज्ञान।

अर्जुन जिस को जानकर, शेष रहे ना ज्ञान ॥७– २॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

कई हजार में एक ही, करता सिद्ध–प्रयास।

सिद्धों में से एक मगर, मुझको जाने ख़ास ॥७– ३॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

भूजल अग्नि वायु गगन,बुद्धि दर्प अपार।

यही है मेरी प्रकृति, यही मूल यह सार ॥७– ४॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

आठ शक्तियाँ जड़ रहे, उत्तम शक्ति जान।

जीव बिना ये जग नहीं, परम् पार्थ तू मान ॥७– ५॥

एतध्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥

मै ही जीव अजीव हूँ, सबका कारण जान।

आदि रहे या अंत हो, मुझको कारण मान ॥७– ६॥

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

श्रेष्ठ नहीं मुझसे कोई, देख धनन्जय जान।

मुझमें ही सब बँधे गये, धागा माला मान ॥७– ७॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥

मैं ही जल का स्वाद हूँ, सूरज चन्द्र प्रकाश

मैं वैदिक ओंकार हूँ, गर्जन ले आकाश ॥७– ८॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।

जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥

मैं ही भू की गंध हूँ, मैं ही अग्नि का तेज़।

मैं जीवों में जीव हूँ, तपस्वियों का तेज़ ॥७– ९॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥

सब जीवों का बीज मैं, पार्थ सनातन जान।

विद्वानों की बुद्धि मैं, मैं ही तेज़ महान ॥७– १०॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥

बलवानों का बल सदा, अनासक्त निष्काम।

धर्मपरायण हे अर्जुन , शास्त्र ये सम्मत काम ॥७– ११॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।

मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥

मुझसे ही गुण हैं सभी, रजो तमो सत मान।

हर गुण में मै ही सदा, मुझे गुणरहित जान ॥७– १२॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥

तीन गुणों के भाव से, यह सारा संसार।

मोहित जग ना जानता, मेरा यह विस्तार ॥७– १३॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

कठिन पार करना रहे, दिव्य सगुण संसार।

जो मानव मुझ को भजे, वैतरणी वह पार ॥७– १४॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

शरण मेरी आता नहीं, मूढ़ अधम जो होय।

दूर रहे ज्ञानी भ्रमित, असुर न जाने मोय ॥७– १५॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

चार लोग भजते मुझे, अर्जुन अच्छे लोग।

ज्ञानी जिज्ञासु दुखी, लोभी जैसे लोग ॥७– १६॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥

उत्तम ज्ञानी चार में, ख़ास भक्त तू मान।

मै भी उसको प्रिय रहू, प्रिय मुझे वो जान ॥७– १७॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

सब ये लोग उदार है, ज्ञानी उत्तम होय।

मुझमे ही वें बस रहे, परम मिलेगा तोय ॥७– १८॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

कई जन्म के अंत में, ज्ञानी मुझको पाय।

वासुदेव मुझको समझ, भज दुर्लभ कहलाय ॥७– १९॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।

तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

ज्ञान रहित कामी पुरुष, भजते नाना देव।

इधर उधर भटके उन्हें, मिले ना वासुदेव ॥७– २०॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥

जो भजता जो देवता, श्रद्धा रखता खास

स्थिर वो श्रद्धा मैं करूँ, देवी मिले उजास ॥७– २१॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।

लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥

पूजे देव विशेष जो, करता मन से ध्यान।

पूरी होवे कामना, मेरे द्वारा जान ॥७– २२॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

अल्पबुद्धि फल क्षणिक हैं, फल होता है नाश।

देवलोक पूजन मिले, मै भक्तों का वास ॥७– २३॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।

परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

मन्दबुद्धि समझे मुझे, हूँ प्रकट बिना आधार।

परमरूप नहीं जानते, देते है आकार ॥७– २४॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

प्रगट नही सबके लिए, माया चारों ओर।

मूढ़ मुझे समझे नहीं, मै अविनाशी मोर ॥७– २५॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥

हे अर्जुन मै जानता, भूत सहित हर काल।

जानूँ भावी जीव को, लोग न जाने चाल ॥७– २६॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।

सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥

राग द्वेष का उदय ही, पार्थ मोहिनी चाल।

जीव फँसे सम्मोहन में, मिलता माया जाल ॥७– २७॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

नष्ट पाप जिनके हुये, पावन जिनके काम।

मुक्त मोह से वो रहे, भजते मेरा नाम ॥७– २८॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥

रोग मरण से मुक्ति मिले, शरणागत जो होय।

ब्रह्म रुप वो जानते, कर्म अाध्यात्मिक होय ॥७– २९॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।

प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥

देव, जगत या यज्ञ हो, मेरा ही प्रताप।

जो जाने इस बातको, मृत्यु लगे ना पाप ॥७– ३०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥